आलेख

लालन शाह फ़क़ीर: ‘मोनेर मानुष’ के अनन्य गायक

सामाजिक विमर्श
1(1) 31–56
© 2018 CSD and
SAGE Publications
sagepub.in/home.nav
DOI: 10.1177/2581654318788484
http://smv.sagepub.in

मुचकुन्द दूबे[1]

सार

प्रस्तुत आलेख में एक ऐसे युग पुरूष का चित्रण किया है जिन्होंने अपने काव्य और संगीत द्वारा समताकारी समाज के निर्माण का दर्शन प्रस्तुत किया है। इस दर्शन को बाउल-पंथ कहा जाता है। इस लेख में बाउल पंथ की उत्पति, प्रसार और प्रभाव का विश्लेष्ण किया गया है। यह पंथ जीवन-साधना है, न कि एक धार्मिक भ्रमजाल। इसमें स्त्री-पुरूष की समानता पर बल दिया गया है। इस पंथ की मानवतावादी सोच से रविंद्रनाथ ठाकुर प्रभावित हुए थे। वास्तव में लालन शाह एक गणमान्य समाज सुधारक थे। बंगलादेश में लालन शाह फकीर अत्यन्त लोकप्रिय हैं। भारतीय समाज की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता और जटिलता को समझने में भी लालन शाह का दर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस दर्शन का सार मानवतावाद है।

कुंजी शब्द

बाउल पंथ, संगीत, साधना, समानता, मानवतावाद दर्शन।

लालन शाह फ़क़ीर भारतीय संत-कवि परंपरा के एक महान व्यक्तित्व थे। वे एक उत्कृष्ट साधक, चिंतक, समाज सुधारक, कवि एवं संगीतकार थे। बंगाल के बाउल साधकों में लालन सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। भावों की गंभीरता, अभिव्यक्ति की सरलता एवं सहज सौंदर्य उनकी कविता की परिभाषा थी। बाउल संगीत आज बांग्ला लोक संगीत की एक मूलधारा है और इसे इस स्थान पर पहुँचाने का श्रेय लालन शाह फ़क़ीर को है। इनके गीतों में काव्य गुणों की प्रचुरता और संगीत की मधुरता के साथ गूढ़ तत्त्वज्ञान छिपा हुआ है।

संप्रति, लालन शाह फ़क़ीर बांग्लादेश के लोक मानस में एक उपास्य प्रतिमा (icon) के रूप में प्रस्थापित हैं। उनको एक मर्मज्ञ साधक, प्रतिभाशाली कवि और चोटी के संगीतकार के रूप में जितनी व्यापक मान्यता और लोकप्रियता प्राप्त हुई है, उसका बंगाल के इतिहास में शायद ही कोई अन्य दृष्टांत दिखाई देता है।

[1] अध्यक्ष, काउंसिल फ़ॉर सोशल डेवलपमेंट, नई दिल्ली, ईमेल: csdnd@del2.vsnl.net.in

लालन शाह फ़क़ीर के जीवन के तथ्य रहस्य आच्छादित हैं। इनमें से अधिकांश मनगढ़ंत अटकलबाज़ियाँ हैं। उनके जन्म के बारे में हम निश्चित रूप से कुछ भी नहीं जानते। केवल उनकी मृत्यु की तारीख़ का लिखित प्रमाण है, और वह है 17 अक्टूबर 1890। यह प्रमाण स्थानीय पत्रिका 'हितकरी' में 31 अक्टूबर 1890 में उनके बारे में प्रकाशित एक संपादकीय लेख में पाया जाता है। इस लेख का शीर्षक था: 'महात्मा लालन फ़क़ीर'। लालन गवेषकों के बीच क़रीब-क़रीब सहमति है कि यह निबंध 'हितकरी' के सह-संपादक और पेशे से वकील रायचरण दास ने लिखा था। निबंधकार ने लिखा है कि 'लालन के शिष्यों ने उन्हें बताया कि मरने के वक़्त उनकी आयु 116 साल थी। यदि इसे सत्य मानते हैं तो उनका जन्म 1774 ई. में हुआ।'

केवल 'हितकरी' के निबंध में वर्णन किया गया उनका जीवन-वृत्तांत प्रामाणिक माना जाता है, क्योंकि इस पत्रिका का मूल अंक जिसमें यह निबंध प्रकाशित हुआ था, अभी भी उपलब्ध है। यह निबंध लालन की मृत्यु के दो हफ़्ते के भीतर प्रकाशित हुआ और इसके लेखक लालन से परिचित थे। हितकरी के निबंध के अलावा लालन के जीवन के तथ्यों के बारे में कोई अन्य लिखित प्रमाण नहीं है। लालन के गीतों के एक प्रसिद्ध संग्रहकर्ता बसंत कुमार पाल ने लिखा है कि उन्होंने लालन के दो शिष्यों भोलाइ शाह और पंजू शाह से सुना है कि 'हितकरी पत्रिका में प्रकाशित लालन शाह के जीवन के विषय पर निबंध सब तरह से सत्य है।' इससे इस निबंध की प्रामाणिकता और भी सुदृढ़ हो जाती है। गवेषक 'हितकरी' के निबंध को सर्वसम्मति से प्रामाणिक मानते हैं।

वर्तमान लालन गवेषकों में शायद सबसे प्रसिद्ध, अबुल अहसान चौधरी ने लिखा है कि लालन शाह फ़क़ीर कायस्थ थे। उनकी उपाधि थी 'कर' या 'दास'। प्रो. चौधरी स्वयं यह भी कहते हैं कि यह एक किंवदंती है जिसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है। उनका मुसलमान परिवार में लालन-पालन होने की एक कहानी यह है कि जब वे अपनी तीर्थयात्रा में चेचक से ग्रस्त होने पर अपने साथियों द्वारा मृतप्राय समझकर रास्ते में छोड़ दिए गए थे तब सिराज नामक एक मुस्लिम फ़क़ीर और उनकी पत्नी उन्हें रोगग्रस्त, बेहोश और अचेतन अवस्था में उठाकर अपने घर ले आए। उनकी सेवा-सुश्रुषा के कारण वे स्वस्थ हो गए। लेकिन इस रोग के कारण उनकी एक आँख की रोशनी चली गई। सिराज संतानहीन थे, इसलिए लालन को पुत्र रूप में ग्रहण कर लिया और अपने यहाँ रखा। उन्होंने लालन को बाउल पंथ की दीक्षा दी। कुछ विद्वानों का मानना है कि सिराज साँई ने उन्हें दरवेश मार्ग की दीक्षा दी।

यूँ तो सिराज साँई के बारे में अटकलबाज़ी से बहुत बातें लिखी गई हैं लेकिन उनके संबंध में कोई विश्वसनीय तथ्य पाना कठिन है। लालन ने अपने गीतों में जिस श्रद्धा, समर्पण-भावना और अनवरतता के साथ उनका ज़िक्र किया है उससे लगता है कि वे एक असाधारण पुरुष थे और अपने ज़माने के साधकों और ज्ञानी पुरुषों में उनका विशिष्ट स्थान था।

एक अन्य वर्णन के अनुसार, लालन को सिराज साँई और उनकी पत्नी ने नहीं बचाया, बल्कि उनके संगियों ने उन्हें मृत समझकर नदी में फेंक दिया, और उनका शरीर बहते हुए नदी के दूसरे किनारे आ पहुँचा, जहाँ एक मुसलमान औरत ने उनको देखा और नदी से निकालकर उन्हें अपने घर ले गई। उसकी सेवा-सुश्रुषा के चलते वे रोगमुक्त हुए। फिर अपने घर वापस आए, जहाँ वे एक मुसलमान के घर में रहने के कारण अस्वीकृत कर दिए गए। उन्हें गृहत्याग करना पड़ा। इस घटना के बाद, शास्त्र, बाह्याचार और जातिधर्म के ख़िलाफ़ लालन में एक गंभीर विराग जगा जिसकी अभिव्यक्ति उनके गीतों में हुई है।

कुश्तिया अंचल के एक विख्यात लालनपंथी फ़क़ीर ख़ुदाबख़्श शाह ने, जो लालन को व्यक्तिगत रूप से जानते थे, लालन के शारीरिक आकार-प्रकार का बहुत सुंदर वर्णन किया है। उन्होंने कहा है: 'लालन के सर पर बाबरी बाल थे, चेहरे पर लंबी दाढ़ी थी, वे एक आँख से दृष्टिहीन थे, मुँह पर चेचक के कुछ बचे दाग़ थे और चेचक से अप्रभावित आँख में एक गंभीर अंतर्भेदी दृष्टि थी।' माना जाता है कि इसी वर्णन के मुताबिक़ ज्योतिरींद्रनाथ ठाकुर ने लालन का रेखाचित्र बनाया था जो उनकी एकमात्र उपलब्ध प्रामाणिक प्रतिछवि है। पर कुछ लोग कहते हैं कि ज्योतिरींद्रनाथ ने लालन शाह को देखकर उनका यह रेखाचित्र बनाया था।

लालन शाह हिन्दू थे या मुसलमान, इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। कुछ गवेषकों ने उनके जन्म से मुस्लिम होने के प्रमाण पेश किए हैं, पर ये विश्वसनीय नहीं हैं। उनको मुसलमान साबित करने के लिए उनके गीतों में अरबी और फ़ारसी शब्दों के प्रयोग और क़ुरान, हदीस आदि के ज़िक्र का हवाला दिया गया है। पर यह दलील बड़ी लचर है। अरबी और फ़ारसी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ लालन शाह ने संस्कृत शब्दों का भी प्रचुर प्रयोग किया है और अपने गीतों में हिन्दू देवी-देवताओं की लीला और ऐश्वर्य का चित्रण किया है। यह उनकी विद्वत्ता और उदारभावना का परिचायक है, उनके किसी धर्मावलंबी होने का नहीं।

बाउलपंथी संस्थागत धर्म से परे थे। वे साधक के रूप में चिह्नित होना पसंद करते थे। उन्हें यह बात क़तई पसंद नहीं थी कि कोई उन्हें हिन्दू या मुसलमान के रूप में खड़ा करने की चेष्टा करे। सही तो यह है कि उनके लिए उनकी साधना ही सर्वश्रेष्ठ पहचान थी।

इस मार्ग में धर्म का, या हिन्दू-मुसलमान कुल में जन्म लेने की बात का कोई मतलब नहीं था। अपने एक गीत में लालन ने कहा है:

सब पूछते हैं लालन फ़क़ीर हिन्दू या मुसलमान, लालन कहे पता नहीं मुझे, मेरी क्या पहचान।[2]

लालन शाह के जन्मस्थान के बारे में भी विवाद है। कुछ गवेषक कहते हैं कि उनका जन्म तत्कालीन नदिया ज़िले के चापड़ा नामक गाँव में हुआ। चूँकि यह स्थान कुश्तिया ज़िले में है इसलिए विश्वसनीय लगता है। पर कुछ लोग कहते हैं कि इनका जन्मस्थान यशोहर ज़िले में स्थित हरिणपुर गाँव था।

साधना और जीवन दर्शन

लालन शाह सर्वश्रेष्ठ बाउल माने जाते हैं। कई लोगों ने उन्हें बाउल सम्राट की उपाधि दी है। ये बाउल आख़िर हैं क्या? बाउल शब्द के अनेक अर्थ लगाए गए हैं। कुछ गवेषक बाउल पंथ को इस्लाम के समीप खड़ा करने की चेष्टा में उसे 'आउल' से निकला मानते हैं, और कहते हैं कि 'आउल' 'औलिया' का अपभ्रंश है। बाउल का एक अन्य अर्थ लगाया गया है, 'बातिल', यानी धर्म से बाहर या उससे च्युत। यह अर्थ उतना बेतुका नहीं है, लेकिन बिल्कुल सही भी नहीं प्रतीत होता। बंगाल

[2] इस आलेख में दिए गए लालन शाह के गीतों के सभी हिंदी उद्धरण 'लालन शाह फ़क़ीर के गीत' से लिए गए हैं (मुचकुंद दूबे, 2017)।

या उसके सटे इलाक़ों में बाउल शब्द का प्रयोग 'पागलतुल्य' के अर्थ में किया जाता है। वहाँ इसके लिए 'बौला' शब्द का भी प्रयोग होता है। उत्तर भारत में इसके सबसे निकट का शब्द है– 'बावरा'। बैजू बावरा को कौन नहीं जानता? भोजपुरी में क्रियावाचक रूप में 'बौराना' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है पगलाना। बाउल परंपरागत धर्मों के परे हैं। बाउल प्रथा एक धर्म नहीं, बल्कि एक साधन-मार्ग है। यही कारण है कि इनके शिष्यों में सभी धर्मों के लोग शामिल हैं। इस पंथ के अनुयायी देवी-देवताओं की पूजा नहीं करते, मंदिर या मस्जिद की दौड़ नहीं लगाते, ये तमाम शास्त्रों को नकारते हैं, और तीर्थ, स्नान, पूजापाठ, कीर्तन आदि बाह्याचार का मख़ौल उड़ाते हैं। ये किसी पीर के मुरीद नहीं होते और न किसी साधु-संत के पदानुसारी।

इनका पुनर्जन्म एवं स्वर्ग-नरक में कोई विश्वास नहीं, ये परलोक के प्रति उदासीन हैं। इनकी साधना का लक्ष्य है इसी भुवन में, इसी एक जीवन में, और अपनी ही देह में परम तत्त्व को पहचानना और उसे प्राप्त करना।

इस साधना में औरत-मर्द दोनों को हिस्सा लेने का अधिकार है। वस्तुतः नारी का साथ होना अपरिहार्य है। इसलिए, बाउल पंथी शादी करते हैं और सपत्नीक जीवन निवास करते हैं, लेकिन संतान पैदा नहीं करते।

बाउल परम ब्रह्म या महान अल्लाह को मानते हैं। लालन शाह के गीतों में कई जगह अल्लाह, रसूल या नबी का ज़िक्र है। मौला को पुकारने पर ज़ोर दिया गया है, ठीक से नमाज़ पढ़ने की आज्ञा दी है। उन्होंने ''परम'' के अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है और उनकी पहचान या उन तक पहुँचना साधना का चरम उद्देश्य माना है। परन्तु अंतर यह है कि यह परम ब्रह्म मानुष तत्त्व के रूप में देह में विराजमान है, और देह साधना से ही मिल सकता है। उनकी साधना का चरम लक्ष्य है – 'मन के मानुष' को पहचानना। उनके मुताबिक़, मनुष्य में ही 'मानुष' विराजता है। लालन शाह ने गाया है, 'मानव गुरु में निष्ठा जिसकी, सब साधन सिद्ध होती उसकी', 'माधुर्य भजन के लिए मानुष रूप गढ़ा है निरंजन ने'। बंगाल के वैष्णव संत मानुष को ईश्वर के भी ऊपर मानते थे। यह भाव प्रसिद्ध संत कवि चंडीदास की निम्नलिखित उक्ति में सबसे सरल रूप में अभिव्यक्त हुआ है–

> सबाइ उपरे मानुस सत्य, ताहार उपरे नाई।
> (सबसे ऊपर मानुष सत्य है; उसके ऊपर और कुछ नहीं।)

बाउलपंथियों के मानव तत्त्व एवं रवींद्रनाथ ठाकुर सरीखे चिंतकों के मानवतावाद के बीच एक अहम अन्तर है। बाउलपंथियों का मानुष तत्त्व उनकी साधना का केंद्रबिंदु है, जबकि मानवतावाद एक व्यापक दर्शन है। फिर भी, दोनों एक जगह आकर मिलते हैं। दोनों मतों के अनुसार, मानुष तत्त्व या ईश्वरत्व प्रत्येक व्यक्ति में विराजमान है, और यही मानव-एकता का शाश्वत प्रमाण है।

देह तत्त्व बाउल साधना का एक अभिन्न अंग है। बाउलपंथियों के अनुसार, बाहर सृष्टि में जो कुछ लीलाएँ होती रहती हैं वे देह में भी होती हैं। इसी देह में सूर्य चंद्र का उदय होता है, ज्वार-भाटा आता है, और मास-दिवस घटते हैं। बाउल लोग देह को ब्रह्मांड का एक क्षुद्र संस्करण मानते हैं। भारत के प्राचीन मनीषियों ने कहा है: 'यथा ब्रह्मांडे, तथा पिंडे', यानी जो ब्रह्मांड में घटता है वही देह-भांड में भी होता है।

बाउलपंथी आध्यात्मिक हैं। हर कोई जो परम ब्रह्म को अंतरात्मा में अनुभव करने की चेष्टा करता है, वह आध्यात्मिक है। गीता में अध्यात्म की परिभाषा है: 'स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते' (अध्याय-8, श्लोक-3)। यहाँ 'स्वभाव' का अर्थ है अपना स्वरूप या जीवात्मा। बाउल इस स्वरूप को निहारने का सतत प्रयास करते रहते हैं। लालन शाह ने अपने एक गीत में 'स्वररूप निहारना' को साधना का चरम लक्ष्य कहा है।

बाउलपंथियों का मानुष तत्त्व रहस्यवाद से दूर नहीं है। लालन शाह फ़क़ीर की श्रेष्ठता भी उनके रहस्यवाद से जुड़ी है। रवींद्रनाथ की भी गणना विश्व के महानतम रहस्यवादी कवियों एवं चिंतकों की श्रेणी में होती है। लालन और रवींद्रनाथ दोनों ने अपने काव्य के इस तत्त्व को बौद्ध धर्म, इस्लाम और हिन्दू धर्म की सामान्य थाती से प्राप्त किया था।

बाउल पंथ का काल निर्धारण

बाउल प्रथा के प्रवर्तन एवं प्रसार का काल-निर्धारण आसान नहीं है। मुहम्मद मंसूरउद्दीन के मुताबिक़, बाउलपंथ का प्रारम्भ 14वीं सदी के अंत या 15वीं सदी के शुरू में हुआ (मुहम्मद मंसूरउद्दीन, 1976क, पृ. 87)। प्रो. उपेंद्रनाथ भट्टाचार्य ने 1650 ई. से 1925 ई. तक के पौने तीन सौ साल की अवधि को बाउलपंथ की उत्पत्ति, विस्तार एवं परिणति का काल माना है। बाउल साधना बौद्ध धर्म के सहजिया पंथ, इस्लाम की सूफ़ी साधना और उत्तर एवं दक्षिण भारत के हिन्दू धर्म की वैष्णव भक्ति साधना की त्रिवेणी माना जाता है। लालन शाह ने इन तीनों स्रोतों में से किसी के भी सारे तत्त्वों को ग्रहण नहीं किया। उन्होंने इनमें से केवल उन तत्त्वों को अपनाया जिन्हें अपनी साधना के लिए आवश्यक समझा। अगर हम लालन शाह फ़क़ीर के अभूतपूर्व योगदान को ध्यान में रखें तो यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बाउलपंथ और उसके संगीत का स्वर्णिम काल 19वीं सदी था जोकि इसके महानतम गुरु का जीवन काल था।

बाउलपंथ में सम्मिलित उपरोक्त तीन स्रोतों में सबसे प्राचीन बौद्ध धर्म की सहजिया साधना है। बौद्ध धर्म ने यह रूप अपने पतन के अंतिम काल आठवीं सदी में ग्रहण किया था। महायान से बाउलपंथ के उद्भव की पुष्टि रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी की है (मुहम्मद मंसूरउद्दीन, 1978, पृ. 9)।

बाउल साधना में परम ब्रह्म और नर-नारी के प्रेम का जो तत्त्व है वह सहजिया मार्ग में नहीं पाया जाता। ये तत्त्व सूफ़ीवाद और भक्तिवाद के मिश्रण से बाउल साधना में आए हैं। उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन, ब्रज की राधा-कृष्ण लीला और बंगाल की वैष्णवी भक्ति में दक्षिण भारत की वेदांत-भावित भक्ति के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुआ। शीघ्र ही यह इस देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया और सदियों तक भारतीय दार्शनिक धारा के रूप में प्रवाहित होता रहा (हजारीप्रसाद द्विवेदी, 2016)।

सूफ़ीवाद ईरान से भारतीय उपमहाद्वीप में आया और फला-फूला। सूफ़ियों में अल्लाह के लिए एक तीव्र व्याकुलता थी। उनकी साधना में अनुराग या प्रेमभाव की प्रबलता थी। औरतें इस साधना की संगिनी बन सकती थीं। सूफ़ी लोग गीत-वाद्य का भी सहारा लेते थे। भारत की मिट्टी में आकर यह बौद्ध सहजिया मार्ग के मनुष्य तत्त्व और वैष्णव एवं अन्य भक्ति मार्ग के प्रेम तत्त्व के साथ सहज रूप से

मिश्रित हो गया। दूसरी ओर, भारत में उत्पन्न इन दोनों पंथों ने सूफ़ियों के संपर्क में आकर नई ऊँचाई और गहराई हासिल की। बाउलपंथ इसी संगम की परिणति है। पूरे 100 साल तक इस साधना में लीन रहकर लालन शाह फ़क़ीर ने इसमें नए भाव भरे। लालन के गीतों में यह तीनों धाराएँ मिली हैं, और इस मिलन से एक अभूतपूर्व काव्य और संगीत सौंदर्य प्रस्फुटित हुआ है।

लालन शाह फ़क़ीर के गीत

लालन शाह फ़क़ीर ने अपने साधना मार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए किसी एक धर्मग्रंथ का सहारा नहीं लिया। उन्होंने अपने गीतों को ही अपनी साधना के तत्त्वों द्वारा अपने शिष्यों तक प्रेषित करने का माध्यम बनाया। लालन शाह ने अपने जीवन के क़रीब 100 वर्षों के दरमियान लगभग 10 हजार गीतों की रचना की (अन्नदाशंकर राय, 1992, पृ. 5)। ऐसी कोई अन्य मिसाल नज़र नहीं आती। अन्नदा-शंकर राय ने लिखा है कि गीतों के अलावा बाउल लोगों का अन्य कोई परिचय नहीं था। उनके गीतों को सुनकर ही हम जानते हैं कि वे कौन और क्या थे और क्या कहने आए थे। बाउल अपने गीतों के अलावा कोई अन्य गीत नहीं गाते थे (उपरोक्त)।

लालन शाह ने कभी भी अपने गीतों को गाने के पहले उनको लिपिबद्ध नहीं किया। जब भाव आया तब गा दिया। फिर उस गीत को पलटकर नहीं देखा। फिर जब नया भाव आया तो नए गीत की रचना कर दी। उनके गीत झरने के पानी की तरह थे जो बहते रहते थे। उनका मानना था कि लिखने से धारा अवरुद्ध हो जाएगी और गीतों का सौंदर्य और प्रभाव नष्ट हो जाएगा। उनका ख़याल था कि यदि उनके गीत खो जाएँ तो खो जाने दो।

लालन शाह के गीत ही उनका संदेश है। जितने गाने वे लिख गए वे सब साधना-तत्त्वों से संपन्न थे; काव्य गुणों से संपूर्ण थे, और संगीत के लिहाज़ से अपूर्व थे। आज उनके गीत हमारे मर्म को छूते हैं। हमारे प्राणों में सौंदर्य और माधुर्य का संचार करते हैं और हमारे जीवन में एक विलक्षण आध्यात्मिक अनुभूति जगाते हैं।

अन्नदाशंकर राय का ख़याल है कि लालन के गीत साधना – संगीत हैं, लोकगीत नहीं। इस विचार की पुष्टि में, उन्होंने बांग्ला भाषा और इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान क्षितिमोहन सेन को उद्धृत किया है: 'बाउल गीति असल में साधन संगीत है। वे अपने गीतों का लोगों के बीच प्रचार और प्रकाश कराना नहीं चाहते' (उपरोक्त, भूमिका)। राय ने खुद पूछा है: 'लालन ने कभी यह कल्पना नहीं की होगी कि उनके गाने लोकगीत के रूप में संग्रहित और संकलित होंगे और जो साधक नहीं हैं वो भी इन्हें पढ़ेंगे और समझना चाहेंगे' (उपरोक्त)? राय ने यह भी कहा है कि लालन शाह के गीत एक प्रकार की शास्त्रीय कविताएँ हैं। इनमें गूढ़ रहस्य भरे हुए हैं, और इनके एक से अधिक अर्थ हैं जिसे साधारण लोग नहीं समझ सकते हैं।

लालन फ़क़ीर नित नए गानों की सृष्टि करते थे। उनको इसमें संशोधन करने का अवकाश नहीं था। छंद मिलाने की माथापच्ची में भी वे नहीं पड़े। उनके गीतों में से कुछ को उनके शिष्यों ने उनके गाने के बाद लिपिबद्ध कर लिया जो लालन शाह के अखाड़े में रखे खाते में पाए गए। ये अभी सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। लेकिन यह कहना मुश्किल है कि वे वही हैं जिन्हें लालन शाह ने गाया। ये सभी या तो नक़ल हैं या नक़ल की नक़ल। अगर इन गीतों में से अधिकांश का किसी-न-किसी रूप में उद्धार

हो भी जाए तो यह शब्दों का उद्धार होगा, उनके सुर, उनकी लय और ताल का नहीं। लालन शाह के कुछ गीतों को उनकी मृत्यु के बाद स्वरलिपि देने की चेष्टा की गई। पर उनकी प्रामाणिकता के बारे में भी संदेह है। अधिकांश गीतों की अभी भी स्वरलिपि नहीं है।

समाज सुधारक के रूप में

लालन शाह मुख्यतः साधक थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन साधना के द्वारा परम ब्रह्म का सामीप्य पाने के लिए अर्पित कर दिया था। उनके गीत साधना के माध्यम और वाहक दोनों थे। अपने गीतों में उन्होंने नैतिक उत्कर्ष और विषय-वासना के परित्याग के बारे में लिखा है। वह संदेश प्रथमतः ख़ुद उनके लिए और उसके बाद उनके शिष्यों के लिए था। उन्होंने प्रत्यक्ष समाज सुधार या नैतिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार का भार कभी नहीं उठाया था। इस कारण से कई गवेषक लालन शाह को समाज सुधारक नहीं मानते हैं।

लालन शाह के जीवनकाल में भारतीय समाज में अनेक विकृतियाँ थीं। हिन्दू-मुसलमान भेदभाव की समस्या भी मौजूद थी। लालन शाह ने अपने गीतों में धर्म पर आश्रित भेदभावों को अनैतिक और ग़लत ठहराया। उन्होंने इस पर आधारित दुराग्रह, शोषण और अंधविश्वासों की तीव्र निंदा की। इनकी असंगतियों का अपने तीक्ष्ण व्यंग्य के द्वारा पर्दाफ़ाश किया। अपने संदेशों को उन्होंने बंगाल के विभिन्न इलाक़ों में घूमकर अपने संगीत के माध्यम से पहुँचाया।

अन्नदाशंकर राय ने यह भी कहा है कि 19वीं सदी के दौरान देश के शिक्षित वर्गों में नवजागरण (रिनैशाँ) की जो लहर चली थी, उस समय ग्रामीण इलाक़ों में अशिक्षित वर्गों के बीच भी एक नया आंदोलन चला था, जिसमें भाग लेनेवालों में मुख्य रूप से बंगाल के बाउल थे जिसके सर्वमान्य और सर्वश्रेष्ठ पुरोधा थे लालन शाह फ़क़ीर। इन दो स्तरों पर चले नवजागरण के आंदोलन के पारस्परिक संबंधों की विवेचना का इतिहास अभी तक लिखा नहीं गया है। जब इसे लिखा जाएगा तब लालन शाह का यथार्थ परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन हो सकेगा (उपरोक्त, पृ. 5)।

रवींद्रनाथ ठाकुर सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया कि हिन्दू-मुसलमानों के बीच मेलजोल कराने और आपस में विश्वास उत्पन्न कराने में बाउल फ़क़ीरों की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। अन्नदाशंकर राय ने बाद में कहा है कि समाज सुधार में सबसे बड़ा काम जो बाउलपंथियों ने किया वह था हिन्दू-मुसलमान के बीच बहने वाली 'साधना नदी पर सेतु बंधन'। उनके अनुसार, जिस काम को नानक, कबीर और दादू ने शुरू किया था, उसे लालन शाह ने स्वाभाविक और सहज रूप में फिर से प्रारम्भ किया और आगे बढ़ाया।

लालन शाह और रवींद्रनाथ ठाकुर

यद्यपि, कुश्तिया स्थित लालन शाह का अखाड़ा रवींद्रनाथ की ज़मींदारी में पड़ता था और रवींद्रनाथ अपनी ज़मींदारी सँभालने के लिए लालन शाह फ़क़ीर की मृत्यु के थोड़ा पहले ही वहाँ पहुँच गए थे, परन्तु इस बात का कोई ठोस सबूत नहीं है कि लालन शाह फ़क़ीर की रवींद्रनाथ के साथ कभी

मुलाक़ात हुई थी। फिर भी, मुहम्मद मंसूरउद्दीन ने लिखा है: 'मैंने सुना है कि लालन शाह के साथ रवींद्रनाथ और उनके पिता महर्षि देवेंद्रनाथ की मुलाक़ात हुई थी। सत्येंद्रनाथ की पत्नी ज्ञानदा देवी के मुँह से लालन शाह और रवींद्रनाथ की मुलाक़ात की बात सुनी है। यह भी सुना है कि लालन शाह के अखाड़े में रवींद्रनाथ का आना-जाना होता था' (मुहम्मद मंसूरउद्दीन, 1978, पृ. 21)। पर 'हारामणि' के प्रथम खंड के अपने 'आशीर्वाद' में रवींद्रनाथ ठाकुर ने लालन शाह फ़क़ीर के साथ अपनी मुलाक़ात के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। उन्होंने केवल लिखा है: 'जब मैं सियालदह में था तो बाउल समूहों के साथ मेरा सदा मिलना-जुलना और बातचीत होती थी'। शायद यहाँ रवींद्रनाथ लालन शाह फ़क़ीर के शिष्यों, जैसे गगन हरकारा, गोसाँई गोपाल और मदन बाउल की बात कर रहे हैं जिनके साथ उनकी मुलाक़ात और विमर्श का लिखित प्रमाण है।

बाउल गीतों की विशेषता का उल्लेख करते हुए रवींद्रनाथ ने कहा है: 'बाउल गीतों के सौंदर्य, भाषा की सरलता, विचारों की गंभीरता और सुरों में दर्द का उदाहरण कहीं और नहीं मिलता। उनमें जितना ज्ञान का तत्त्व भरा है उतना ही काव्य सौंदर्य और उतना ही भक्ति का रस भी मिश्रित है। विश्वास नहीं होता है कि किसी भी लोक-साहित्य में यह अपूर्वता पाई जा सकती है' (मुहम्मद मंसूरउद्दीन, 1976, रवींद्रनाथ का आशीर्वाद)। बाउल संगीत को संरक्षित करने की उनकी चिंता इस बात से समझी जा सकती है कि उसी निबंध में वे आगे लिखते हैं कि बाउल संगीत की यह अमूल्य निधि नष्ट होती जा रही है।

रवींद्रनाथ पर 'बाउल विचारधारा' के गंभीर असर की कल्पना इस बात से की जा सकती है कि उन्होंने अपना एक नाम 'रवींद्र बाउल' भी रख लिया था। अपने 'फाल्गुनी' शीर्षक नाटक के अभिनय में रवींद्रनाथ ने एक अंधे बाउल की भूमिका अदा की थी। भारतीय दर्शन की काँग्रेस के 125वें साल के अधिवेशन में रवींद्रनाथ ने 'द फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ आवर पीपुल' शीर्षक से जो भाषण दिया था उसमें बाउल गीतों की दार्शनिकता और भाव-गंभीरता का उल्लेख किया था। अपने बहुचर्चित उपन्यास 'गोरा' में रवींद्रनाथ ने लालन शाह फ़क़ीर का नाम लिए बिना उनका प्रसिद्ध गीत 'खाँचार भीतर अचिन पाखी' (पिंजड़े के भीतर अनचीन्हा पंछी) को शामिल किया था। इसके चलते यह गीत लाखों साहित्यप्रेमियों के कंठ पर आ गया था।

बाउलपंथियों के दर्शन और विचारधारा की सबसे गंभीर और मुक्त कंठ से की गई उनकी प्रशंसा उनकी पुस्तक 'रिलीजन ऑफ़ मैन' में है, जो ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में दिए गए उनके भाषणों का संग्रह है। लालन शाह फ़क़ीर के दो गीतों को उनके नाम का उल्लेख किए बिना इस पुस्तक में शामिल किया गया है। इन गीतों के संदर्भ में उन्होंने लिखा है, 'यह लोककवि उपनिषद् के हमारे संतों के साथ सहमत है कि अज्ञात के स्पर्श के प्रयास में हमारा मन विचलित और आश्चर्यचकित हो उठता है; परंतु फिर भी यह कवि उन प्राचीन संतों की तरह ही अज्ञात की अपनी साहसिक तलाश का त्याग नहीं करता– इसमें यह सत्य निहित है कि हमें अज्ञात तक पहुँचने के मार्ग उपलब्ध हैं' (Tagore, 1953)।

इस लोककवि की तुलना उपनिषद् के ऋषियों के साथ कर, रवींद्रनाथ ने लालन शाह को एक तरह से अमर कर दिया। उन्होंने तत्कालीन पत्रिका 'प्रवासी' के संपादक रामानंद चट्टोपाध्याय के साथ बातचीत कर उस पत्रिका में 'हारामणि' शीर्षक से लोकगीतों के संग्रह का एक स्तंभ खुलवाया। इस

स्तंभ में अन्य लोकगीतों के अलावा लालन शाह के गीत भी छपे। इसमें स्वयं रवींद्रनाथ ने लालन शाह फ़क़ीर के 20 गीतों को 1915 में छपवाया। इस पैमाने पर लालन फ़क़ीर के गीतों का यह प्रथम प्रकाशन था। इसके अलावा, वर्ष 1915 में ही उन्होंने 'भारती' पत्रिका में 'बाउलगान' शीर्षक से एक निबंध लिखा, और 'बाउलेर गाथा' नामक पुस्तक की समालोचना की। लेकिन, इन सभी संदर्भों में उन्होंने लालन के नाम का वर्णन नहीं किया। हाँ, उनके कुछ शिष्यों के नामों का निस्संदेह ज़िक्र था।

इसलिए, स्वभावतः ही, लालन गवेषकों के बीच इस बात पर सहमति है कि लालन शाह को बंगाल के शिक्षित समाज में एक महान कवि और गीतकार के रूप में स्थान दिलाने और लोकप्रियता स्थापित करने में रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक प्रमुख भूमिका निभाई। आधुनिक दौर के प्रसिद्ध लालन गवेषक, अबुल अहसान चौधरी (2014) ने भी लिखा है: 'पहले बाउल गीत केवल दीक्षाप्राप्त बाउल और उस संप्रदाय के अन्य सक्रिय समूहों तक सीमित थे। शिक्षित बंगालियों को इसमें कोई महत्त्व नहीं दिखाई पड़ता था। इस साहित्यिक ऐतिह्य के प्रति शिक्षित वर्गों में रुचि जाग्रत करने में सबसे बड़ी भूमिका रवींद्रनाथ ठाकुर की रही है। उन्हीं के प्रयास से आज बंगाल में बाउल गीतों को एक महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।'

लालन शाह और कबीर

बंगाल का बाउलपंथ, जिसके लालन शाह फ़क़ीर शिरोमणि थे, भारतभूमि का कोई नितांत नूतन या अलहदा सामाजिक-आध्यात्मिक आंदोलन नहीं था। यह भारत में प्रस्फुटित, पल्लवित और प्रसारित कई पंथों का सम्मिश्रण था। इनमें से मुख्य थे– बौद्ध सहजिया, इस्लामिक सूफ़ीवाद एवं वैदांतिक वैष्णवी भक्ति। उत्तर भारत के प्रख्यात संत कवि कबीर, नानक और दादू और उनसे क़रीब 400 साल बाद आए लालन शाह इसी महान मिश्रित परंपरा के उत्तराधिकारी थे। इसलिए, यह आश्चर्य नहीं है कि कबीर और लालन शाह की कविता में दर्शन और भावों के साथ-साथ भाषा, शैली और मुहावरों की समानताएँ हैं। साथ-ही-साथ, कुछ रोचक और महत्त्वपूर्ण भिन्नताएँ भी हैं। इस संदर्भ में कबीर और लालन शाह फ़क़ीर की तुलना अहम और श्रेयस्कर हो सकती है।

कबीर और लालन शाह दोनों का लालन-पालन लंबे अरसे तक मुसलमान परिवारों में हुआ। लालन शाह ने सिराज साँई से दरवेशी बाउलपंथ की दीक्षा लेकर स्वयं को उनको समर्पित कर दिया, और वर्षों तक उनकी छत्रछाया में रहकर साधना की। कबीर ने बनारस निवासी तत्कालीन संत रामानंद से निर्गुण रामभक्ति की दीक्षा ली।

दोनों परम ब्रह्म के अनुयायी थे, जो निर्गुण और निराकार हैं। लालन ने इन्हें प्राय: साँई या निरंजन पुकारा। कबीर के लिए, वे राम थे। 'कबीर राम को आकार-प्रकार, द्वैत-अद्वैत, भाव-अभाव के परे समझते थे' (हजारीप्रसाद द्विवेदी, 2016, पृ. 121)।

कबीर के भगवान अविगत, अकथ, अचिंत्य और अनुपम थे। लालन के साँई निगुढ़, निर्गम और अलक्ष्य (अलख) थे। लालन के पड़ोसी (इष्टदेव) का 'हस्त, पद, स्कंध और माथा' नहीं था। कबीरदास ने भी कहा है कि:

जाके मुँह माथा नहीं, नाही रूपक रूप,
पहुप-बास थैं पातला, ऐसा तत्त अनूप (द्विवेदी, 2016, पृ. 160)।

यद्यपि लालन शाह के साँई निर्गुण थे, फिर भी उन्होंने अपनी कविता में सूफ़ी संतों एवं वैष्णव भक्तों की तरह उनके सगुण रूप का वर्णन किया है। उन्होंने परम ब्रह्म को 'अवतार और अवतारी' दोनों कहा है। एक गीत में उन्होंने लिखा है:

कभी बनते साकार, कभी हो जाए निराकार,
कोई कहे आकार-साकार,
अपार होने के कारण हैं धुँधले। (मुचकुन्द दूबे, 2017, पृ.198)

इसी प्रकार अनेक गीतों में परम ब्रह्म की स्वेच्छा से की गई सांसारिक लीला और भव्यता एवं विचित्रता का वर्णन है।

कबीर और लालन शाह फ़क़ीर दोनों महायान बौद्ध धर्म के सहजिया पंथ के दो प्रमुख तत्त्वों में विश्वास करते थे। यह था– परम ब्रह्म की अनुभूति, इसी देह, देश और काल में संभव है, और दूसरा, मानव-प्रेम से ही परम पुरुष की प्राप्ति होती है। यही मानव एकता का आधार है। कबीर ने कहा है कि 'मोको कहाँ ढूँढो वंदे, मैं तो तेरे पास में।' इसी को लालन ने दुहराया है– 'इसी मानुष में वह मानुष विराजता है।' मानवत्व और देवत्व की अविभाज्यता दोनों की साधना का एक मुख्य तत्त्व है। इसे कबीर ने इस सतत स्मरणीय दोहे में अभिव्यक्त किया है:

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल,
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

लालन शाह ने इसी विचार को अत्यंत सरल और लोकभाषा में कुछ इस तरह से व्यक्त किया है:

लालन कहे, अपने मुक़ाम में ढूँढ़ो,
दूर अधिक न जावो।

कबीर और लालन शाह दोनों ने अपने इष्टदेव से प्रत्यक्ष नाता जोड़ने में विश्वास किया, और इसके लिए उन्होंने भक्ति को अपना मार्ग बनाया। दोनों के विचार में ज्ञान-मार्ग की जटिलता एवं विषमता में पड़ने से कोई फ़ायदा नहीं। लालन शाह ने कहा है– 'रति से ही मति झरती है'। वहीं कबीर कहते हैं– 'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।'

दोनों संत कवियों ने अपनी वांछित निधि को प्राप्त करने के लिए सहज साधना के मार्ग को अपनाया। कबीरदास ने कहा– 'साधो, सहज समाधि भली।' लालन शाह ने सलाह दी– 'सरल भाव से जो निहारेगा, ऐसा रूप वह देख पाएगा।'

वैष्णव संतों की भक्ति के लिए निष्काम होने की अपरिहार्यता ने वैष्णवपंथियों के लिए जो एक रूप धारण किया है वह है– जीते ही मरना।

कबीर ने इस संदर्भ में बहुत ही अच्छा प्रश्न उठाया है:

हौं तोहि पूछौ हे सखि, जीवत क्यों न मराई,
मुँवा पीछे सत्त करे, जीवत क्यों न कराई।[3]

लालन ने कहा–

मरने के पहले जानो मरना,
गुरु रूप का करके ध्यान।[4]

कबीर और लालन दोनों परंपरागत धर्म के परे थे। अपनी पहचान को हिन्दू या मुसलमान के रूप में दर्शाने की उनकी कभी मंशा नहीं थी। वे समाज को न तो धर्म के आधार पर फ़िरक़ों में और न ही जात-पात के भेदभाव के अनुसार बाँटने के पक्ष में थे। लालन शाह ने कहा है:

सब पूछते लालन फ़क़ीर हिन्दू या मुसलमान,
लालन कहे जानूँ न मैं, मेरी क्या पहचान।

कबीर ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है:

अरे भाई दोई कहाँ से मोहि बतावो
बिचिही भरम का भेद लगावो। (द्विवेदी, 2016, पृ. 111)

लालन ने इसी बात को नाविक और घाट की उपमा के माध्यम से कहा है:

एक ही घाट पर आना-जाना,
एक ही माँझी खेता नाव।

कबीर और लालन दोनों ने परम ब्रह्म तक पहुँचने के लिए बाह्य अनुशासन, आचरण और आडंबर को न केवल अनावश्यक समझा, बल्कि इन्हें वांछित लक्ष्य के मार्ग में बाधक भी माना। इसलिए, दोनों ने इन आचारों पर प्रहार के लिए अपनी भाषा की व्यंग्यात्मक शक्ति का खुल के प्रयोग किया। दोनों संत वेद-पाठ, शास्त्र-निर्धारित कर्मकांड, जैसे तीर्थयात्रा, व्रत, मूर्तिपूजा आदि के प्रबल विरोधी थे। उनको पूर्वजन्म या स्वर्ग-नरक की परिकल्पना में विश्वास नहीं था।

इन विषयों के बारे में उनकी निम्नलिखित उक्तियाँ सुप्रसिद्ध और स्मरणीय दोनों हैं:

धार्मिक पहचान के ख़िलाफ़

कबीर–

[3] हजारीप्रसाद द्विवेदी, 2016, पृ. 155 (मैं तुमसे पूछता हे सखि ज़िंदा ही क्यों न मरें, मरने के बाद जो सद्गति कराएँ, जीते हुए क्यों न कराएँ)।

[4] यहाँ जीते-जी मरने का अर्थ है, मन के सारे रिपुओं– काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य पर विजय प्राप्त करना।

हौं तो तुरक किया करि सुन्नत,
औरतियों सौं का कहिए। (द्विवेदी, 2016, पृ. 111)

लालन–

सुन्नत देने से होता मुसलमान,
नारी का तब क्या हो विधान?
ब्राह्मण चीन्हें जनेऊ प्रमाण
फिर ब्राह्मणी को चीन्हें कैसे रे?

शास्त्रों के ख़िलाफ़

कबीर–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

लालन–

पढ़ने से न मिलता पदार्थ,
आत्मतत्त्व से जो गया भटक।

तीर्थ, व्रत और माला जपने के ख़िलाफ़

कबीर–

माला फेरत जग मुआ, मिटा न मन का फेर,
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।

लालन–

तीर्थव्रत करे जिसके लिए
इसी शरीर में उपलब्ध।

या,

रहता जिसका मानुष मन में,
वह क्या जपता माला।

पुनर्जन्म एवं स्वर्ग-नरक के ख़िलाफ़

कबीर–

बिन गोपाल ठवर नहि कबहुँ,
नरक बात धौ काहीं,[5]
अनजाने को सरग-नरक है,
हरि जाने को नाहीं।

लालन–

असल में इसे मानता नहीं मन,
अरे बकाये के लोभ में नगद पावन,
कौन छोड़ता इस जग में।

कबीर और लालन दोनों प्रबल गुरुवादी थे। दोनों के गुरु अपने ज़माने के प्रसिद्ध संत थे। दोनों ने ही अपने गुरु की नसीहत के अनुसार अपनी साधना का मार्ग चुना और उस पर अटल भाव से क़ायम रहे। दोनों का विश्वास था कि यदि सांसारिक विषमताओं एवं कुकर्मों के कारण साधना की रोशनी धूमिल पड़ जाए तो गुरु की चरण-शरण से ही प्रकाश मिलेगा।

पावन हार के रूप न रेखा,
सतगुरु होई लखावै (द्विवेदी, 2016, पृ. 31)।

लालन ने गुरु को अपार का खेवैया माना, जिसके बिना पार उतरना मुमकिन नहीं है। उन्होंने यह भी कहा है कि 'गुरु के बिना कोई धन नहीं।' उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि:

गुरु रूप में लीन जिसका हृदय,
यमराज से उसे कोई नहीं भय।

गुरु के प्रति इन दोनों संतों के पूर्ण समर्पण का एक पक्ष है, बार-बार अपने हृदय की दुर्बलता और मन की मलिनता को क़बूलना। ये दोनों कहते हैं कि गुरु की कृपा से ही ये दूर होंगे।

इन दोनों संतों के अनेक उपमान और उपमेय समान हैं। जैसे कि, सृष्टि के बारे में कबीर ने कहा है– 'अवधू कुदरति की गति न्यारि।' लालन शाह के एक गीत का शीर्षक है– 'यह बड़ी अजब कुदरति।'

सृष्टि के वैचित्र्य और रहस्यों का चित्रण दोनों ने क़रीब-क़रीब एक ही प्रकार की उपमा से की है। कबीर ने कहा है:

[5] अगर गोपाल के बिना संसार में कोई स्थान नहीं है, तो स्वर्ग-नरक कहाँ है?

तरुवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिन फूलौं फल लागा,
साखा-पत्र कछू नहीं ताके, अष्ट गगनमुख बागा। (द्विवेदी, 2016, पृ. 204)

लालन शाह ने इसी भाव को इस प्रकार प्रकट किया है:

मूल विहीन उस फूल की लता,
डाली विहीन उसका पत्ता।

काव्य-कौशल में कबीरदास और लालन शाह की सबसे बड़ी निकटता है, व्यंग्यकार के रूप में। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'सच कहा जाए तो आज तक हिन्दी में ऐसा ज़बरदस्त व्यंग्यकार पैदा ही नहीं हुआ' (द्विवेदी, 2016, पृष्ठ 131)। मैं बांग्ला साहित्य के व्यंग्य-लेखन के बारे में इतने आधिकारिक रूप से कुछ नहीं कह सकता। लेकिन, लालन शाह के जिस काव्यगुण ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया, वह है व्यंग्यकार के रूप में उनकी असाधारण क्षमता।

साधु-संतों के रिवाज़ों पर गहरा व्यंग्य कसते हुए कबीर ने कहा है कि:

मन न रँगाए, रँगाए जोगी कपड़ा,
कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले,
दाढ़ी बढ़ाय जोगी, होय गैले बकरा' (द्विवेदी, 2016, पृ. 209)।

लालन शाह ने इस भाव को प्रकट करने के लिए लगभग ऐसी ही उपमा दी है:

मन न मुड़ाए केश मुड़ाने से, मिल सकता क्या रतन!

लालन संगीत का संकलन

प्रसिद्ध संकलन और संग्रहकर्ता

लालन शाह फ़क़ीर के गीतों का संकलन उनकी मृत्यु के बाद शुरू हुआ। इनमें से अनेक गीतों का संकलन अभी तक नहीं हो पाया है। कुछ तो खो गए हैं, और शायद कभी प्राप्त नहीं होंगे। कुछ बिना लिपिबद्ध हुए अभी भी बाउलपंथियों के कंठ में विराजमान हैं। लालन का एक गीत, उनके जीवन-चरित्र पर लिखे गए 31 अक्टूबर 1890 में प्रकाशित 'हितकरी' के संपादकीय लेख में पहली बार शामिल किया गया। वह गीत है– 'सबलोग पूछें लालन की जात, जगत में, लालन कहे जात का रूप देखा न इस नज़र से।' इसके पाँच साल बाद 1895 में सरला देवी ने ठाकुर परिवार की पत्रिका 'भारती' में 'लालन फ़क़ीर और गगन' शीर्षक का एक निबंध प्रकाशित कराया, जिसमें लालन के 11 गीत शामिल किए गए। 1918 में, 'वीणावादिनी' नामक पत्रिका में ठाकुर परिवार की इंदिरा देवी ने लालन के कुछ गीतों की स्वरलिपि लिखकर प्रकाशित की। लालन शाह का प्रसिद्ध गीत 'पिंजड़े के भीतर अनचीन्हा पंछी', रवींद्रनाथ ठाकुर के उपन्यास 'गोरा' में शामिल किए जाने के कारण अत्यंत ही लोकप्रिय हो चुका था।

लालन शाह फ़क़ीर के तत्कालीन उपलब्ध गानों का सबसे प्रामाणिक संग्रह भी रवींद्रनाथ ठाकुर की चेष्टा से हुआ। ये गीत लालन शाह फ़क़ीर के सेउड़िया स्थित अखाड़े से रवींद्रनाथ ठाकुर की ज़मींदारी के एक सहकर्मी द्वारा लाए गए दो खातों में लिखे हैं, जो अभी भी पांडुलिपि के रूप में शांति निकेतन के रवींद्र सदन में रखे हुए हैं। इन दोनों खातों में कुल मिलाकर 298 गीत हैं।

इसके बाद, सर्वसम्मति से प्रामाणिक दूसरा संग्रह 1958 में 'लालन गीतिका' शीर्षक से कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ। इसके संग्रहकर्ता मतिलाल दास एवं पीयूष कांति महापात्र थे। इस संग्रह के गीत भी लालन शाह के अखाड़े में पाए गए खातों से लिए गए हैं। मतिलाल दास एक समय में कुश्तिया में मुंसिफ़ थे जिसके कारण उनको अखाड़े में प्रवेश प्राप्त हुआ था। उसके एक साल पहले, 1957 में उपेंद्रनाथ भट्टाचार्य ने 'बांग्लार बाउल उ बाउल गान' शीर्षक से एक संग्रह प्रकाशित किया। इसके बाद, क़रीब एक दशक का विराम रहा। तत्पश्चात लालन संगीत के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए। इनके संग्रहकर्ताओं में प्रमुख हैं– बसंत कुमार पाल (प्रवासी प्रेस, कलकत्ता), मुहम्मद अबू तालिब ('लालन शाह औ लालन गीतिका', बांग्ला एकेडमी, ढाका, 1968); खोंडकार रफ़ीउद्दीन ('भावसंगीत', हासी प्रकाशन, पाबना, 1965); मुहम्मद मनिर्रूज्जमान ('लालन फकीरेर गान', इतिहास ऐतिह्य प्रकाशन, कुश्तिया, 1987); फ़क़ीर अनवर हुसैन मंटू शाह ('लालन संगीत', कुश्तिया, 1993); शक्तिनाथ झा ('लालन साँईएर गान', कविता पाक्षिक, कलकत्ता, 2005) और अबुल अहसान चौधरी ('लालन समग्र', पाठक समावेश, ढाका, 2008) आदि।

उपरोक्त संग्रहकर्ताओं का वर्णन इसलिए किया है कि उनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्टता है। उदाहरणस्वरूप, खोंडकार रफ़ीउद्दीन का 'भावसंगीत', 1950 के दशक के बाद का पहला संग्रह है। फ़क़ीर अनवर हुसैन मंटू शाह, कुछ समय पूर्व तक लालन शाह के अखाड़े के सक्रिय साधक थे। और अबुल अहसान चौधरी ने लालन शाह के गीतों पर इतने विस्तार से और इतने लम्बे तक शोध किया है, और इतनी पुस्तकें लिखी हैं कि लालन शाह के आधुनिक गवेषकों में ये सहज ही सर्वप्रथम स्थान के दावेदार बन जाते हैं।

लालन संगीत के एक महान संग्रहकर्ता थे – मुहम्मद मंसूरउद्दीन, जिनकी 'हारामणि' नामक पुस्तक के आठ खंडों में बंगाल के अनेक दुर्लभ लोकगीतों के साथ-साथ लालन शाह के अनेक गीत सम्मिलित किए गए हैं। उन्होंने बंगाली लोकगीतों के संग्रह का प्रारंभ लालन शाह के गीतों से ही किया था, और वर्षों तक यही करते रहे।

उन्हीं के शब्दों में– 'रवींद्रनाथ ठाकुर ने उन्हें इस काम के लिए अनुप्रेरित किया। उन्होंने 'आशीर्वाद' शीर्षक से उसकी भूमिका लिखी' (मुहम्मद मंसूरउद्दीन, 1978, पृ. 60)। इसका दूसरा खंड श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मदद से कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया। बाद का एक खंड ढाका विश्वविद्यालय से इस शर्त पर प्रकाशित हो पाया कि सुपुर्द की गई पांडुलिपि के कुछ गीतों को निकाल दिया जाए। 'हारामणि' के सप्तम खंड का दूसरा संस्करण 1978 में बांग्ला एकेडमी, ढाका द्वारा प्रकाशित किया गया, और अंतिम अष्टम खंड उसी संस्था द्वारा 1976 में प्रकाशित हुआ। सप्तम खंड का परिचय प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी एवं साहित्यकार सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय ने लिखा।

अनेक गवेषकों ने लालन शाह फ़क़ीर के गीतों की संख्या का आकलन दस हज़ार से ज़्यादा किया है। लेकिन, अब तक प्रकाशित गीतों की संख्या इससे बहुत कम है। मतिलाल दास एवं पीयूष कांति

महापात्र के संग्रह में 371 गीत सम्मिलित हैं। शक्तिनाथ झा ने अपनी पुस्तक में 375 गीतों को शामिल किया है। अनवर हुसैन मंटू शाह के संग्रह में 800 गीत ाशामिल किए गए हैं। मुहम्मद मंसूरउद्दीन और अबुल अहसान चौधरी ने लालन के गीतों को सूचीबद्ध किया है। मुहम्मद मंसूरउद्दीन की सूची में 563 गीत शामिल किए गए हैं।

गीतों की प्रामाणिकता

लालन शाह फ़क़ीर के गीतों की प्रामाणिकता को लेकर अनेक विवाद हैं। कुछ विद्वान केवल उनके अखाड़े से प्राप्त खाते से लिए गए गीतों को ही प्रामाणिक मानते हैं, यानी रवींद्रनाथ ठाकुर द्वारा और मतिलाल दास एवं पीयूष कांति महापात्र द्वारा संकलित गीतों को ही मान्यता देते हैं। कुछ विद्वान उपेंद्रनाथ भट्टाचार्य के संग्रह को भी प्रामाणिक मानते हैं, क्योंकि यह संग्रह काफ़ी पहले प्रकाशित हुआ, और इसके लिए वृहत शोध हुआ। कुछ गवेषक शक्तिनाथ झा के संपूर्ण एवं मुहम्मद अबू तालिब के संक्षिप्त संग्रह को भी प्रामाणिक मानते हैं। फ़क़ीर अनवर हुसैन मंटू शाह के संग्रह में सबसे अधिक (800) गीत हैं। इसमें अनेक ऐसे गीत हैं जिनको कुछ गवेषक प्रामाणिक नहीं मानते। लेकिन, ये कुश्तिया इलाक़े में और प्रसिद्ध गायकों के बीच अत्यंत लोकप्रिय हैं। मेरी समझ से, अबुल अहसान चौधरी के संग्रह को भी, उसके लिए किए गए विस्तृत शोध-कार्य को ध्यान में रखते हुए, प्रामाणिक मानना चाहिए। इनके 'लालन समग्र' में लालन शाह के गीत, उनके बारे में लिखे गए सारे ऐतिहासिक और अनेक आधुनिक लेख एवं विदेशी भाषा में किए गए लालन शाह के गीतों के लगभग सारे अनुवाद बांग्ला में अनुवादित कर शामिल किए गए हैं। यह निश्चय ही लालन शाह पर लिखी गई एक असाधारण कृति है।

लालन शाह का वैशिष्ट्य

हम कह चुके हैं कि बाउलपंथियों की विचारधारा पर सहजिया बौद्ध मत का बहुत बड़ा प्रभाव है। इस सूत्र से दो विचारधाराएँ भारत के विभिन्न मतों में आकर मिली हैं– ये हैं, काया साधना और मानुष में परम पुरुष की पहचान और अनुभूति। काया साधना से संबंधित और मानुष में मानुष रत्न को पाने के भाव को प्रकट करनेवाले गीतों में अनेक भावगीत हैं। भक्तिभाव से भरे इन गीतों में वैष्णवी और सूफ़ी इस्लामी भक्ति की धारा प्रवाहित है।

लालन शाह ने अपने गीतों में हिन्दू-मुसलमान के बीच के भेदभाव की तीव्र आलोचना की है। इसके अलावा, उन्होंने शास्त्र-पुराण एवं बाह्याचार पर आधारित धर्मानुसरण पर ज़बरदस्त प्रहार किया है। कुछ गीतों में उन्होंने बहुमूल्य नसीहतें दी हैं। इस प्रकार के गीतों को हम आसानीकरण के मक़सद से समाज सुधार के गीतों की संज्ञा दे सकते हैं। यह स्पष्ट है कि किसी भी एक श्रेणी में अन्य श्रेणी के गीतों के भाव भी शामिल हैं। उदाहरण के लिये, शरीर साधना के गीतों में अनेक गीत भक्ति रस के हैं। समाज सुधार से संबद्ध गीतों में भक्ति रस और देह साधना के गीत कमोबेश दिखाई देते हैं।

दर्शन और साधना

अनेक गीतों में, एकेश्वर या अल्लाह, जिनके अलावा और कोई नहीं है, के चमत्कार और ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है। वह परम पुरुष मेघ में विद्युत की छटा जैसे हैं– 'चाँद के गले में तारों की माला', 'एक चाँद जिससे होता समस्त विश्व उजाला।' वही है ताजेल्ला और नूरी; वही है अल्लाह और जगतपति; वही है साँई और निरंजन, वही है ला-शरीक यानी उसकी सृष्टि लीला और संचालन में और कोई शामिल नहीं है। जैसे गीता में कहा गया है– 'न त्वतसमोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो' (11–43)। वह एक ही है, लेकिन उसने अपने नाम अनेक रखे हैं, जैसे 'कृष्ण', 'करीम' और 'काला'।

लालन शाह के उपास्य निर्गुण थे, जिसका 'हस्त, पद, स्कंध, माथा' नहीं है। नूरी ला-मुक़ाम है। वह अधर (दुष्प्राप्य) और अधर-चाँद है। उसकी झलक केवल एक क्षण के लिए मेराज में होती है, जिसमें दो जन मिलते हैं, 'गुप्त-व्यक्त' अवस्था में।

लालन शाह के साँई नज़दीक भी हैं, और दूर भी। उनके घर के पास के आरसी नगर में वास करने वाले पड़ोसी को वे एक दिन भी नहीं देख पाए। वे और लालन एक ही जगह रहते हैं। लेकिन लाख योजन दूर हैं।

> साँई निकट से दूर दिखते हैं जैसे केश की आड़ में पहाड़ छिपा।

लालन शाह ने कहा है कि यह परम पुरुष मानुष में ही विराजता है और वहीं पाया जा सकता है– 'इसी मनुष्य में मिलता वह मनुष्य पहचान पाता यदि'; 'मनुष्य में मनमानुष का विहार'; 'मेरे घर में कौन विराजे, मैं एक दिन भी न देख पाया उसे रे'; 'चढ़े उतरे ईशान कोने में, फिर भी न आए नज़र में'; 'कौन वह जो बात करे पर दिख पड़े ना'; 'चढ़ता-उतरता आसपास खोजने पर जनम भर न मिलता'; 'खोजूँ उसे आसमान-ज़मीन पर, निज ही को न पहचान पाता मैं'; 'आसपास की तो है न ख़बर, क्या फ़ायदा जाने से दिल्ली लाहौर'।

लालन शाह ने भक्ति रस से भरे अपने गीतों में बार-बार कुछ प्रसिद्ध भक्तों की प्रशंसा की है। इसमें शामिल हैं रामदास मोची, जिन्होंने एक धोबिन से प्रेम किया था और उस प्रेम में अपनी सारी भावनाओं को डुबोकर मरकर ज़िंदा हो गए थे। 'उनकी भक्ति का डंका स्वर्ग में बजता है।' फिर हनुमान का नाम आता है, जो राम को छोड़कर 'अपने दोनों नयन बंदकर भी न चाहते अन्य रूप दर्शन।' कबीर का भी ज़िक्र किया है जिन्होंने अपने इष्ट देव की भक्ति के लिए सब कुछ विसर्जित कर दिया था। अनेक गीतों में चातक का मेघ के साथ प्रेम का वर्णन है। उन्होंने कई जगह लिखा है– 'चातक मर रहा मेघ ध्यान में और मेघ बरसे अन्य प्रांत में।'

ऐसी भक्ति आसानी से नहीं की जा सकती।

'क्या आसानी से होगा उसका दर्शन'; 'यह न है केवल कहने की बात'; 'अरे यह प्रेम करना है क्या किसी क़िस्से-कहानी की बात?'

यह प्रेम बिना अनुराग या भक्ति रस के नहीं हो सकता। 'अनुराग बिने नाहीं स्वरूप साधना।' यह बिना सोचे-विचारे नहीं हो सकता। अगर सोच-विचार में त्रुटि हो तो गुरु की चरण-शरण लेनी चाहिए। 'मरना चाहो यदि श्याम की प्रीति में, पहले जान लो क्या है उसकी रीति'।

लालन शाह ने सहज प्रेम को भी श्रेयस्कर माना है– 'सरल भाव से जो निहारेगा, ऐसा वह रूप देख पाएगा।'

इस प्रेम के लिए जीते हुए मरना आवश्यक है। लालन शाह ने कहा है–'मरने के पहले जानो मरना'; 'मरकर जो जी सकता है, प्रेम गुरु है उसको कहते।'

देह साधना के गीतों में उसके मूल मंत्र को दुहराया गया है, और वह है– 'यथा ब्रह्मांडे, तथा पिंडे'। लालन शाह के गीतों की भाषा में– 'जैसी लीला करते ब्रह्मांड में, वैसी ही लीला इस भांड में।' पुनः, 'भांड और ब्रह्मांड मध्य साँई बिना कोई खेल नहीं।'

बौद्ध सहजिया पंथ का मानुष तत्त्व लालन शाह के अनके गीतों में प्रकट हुआ है। सच पूछें तो मानुष में मन-मानुष के विराजने के विचार को लालन शाह ने एक नई ऊँचाई पर लाकर खड़ा कर दिया है। ऐसा शायद भारत महादेश या विश्व के किसी भी कवि की कविता में नहीं पाया जाता। इन गीतों में से कुछ के शीर्षक हैं– 'इस मानुष में वह मानुष विराजे'; 'वेदों का पंच तत्त्व विचार, मानुष तत्त्व है भजन का सार'; 'सहज मानुष बनकर देखना रे मन दिव्य ज्ञान से'; 'इस मानुष में है रे मन, जिसे कहते हैं मानुष रतन'; 'इस मानुष में ही मिलता वह मानुष पहचान पाता यदि।'

लालन शाह हिन्दू-मुसलमान विवाद में कभी नहीं पड़े। उन्होंने धर्म के बाह्य आचार एवं उस पर आधारित कट्टरता और अंधविश्वास पर प्रबल प्रहार किया। यद्यपि, उन्होंने परंपरागत धर्म का पालन करना ज़रूरी नहीं समझा, वे सच्चे धर्म के ख़िलाफ़ नहीं थे। उन्होंने सलाह दी कि अपने धर्म के मूल सिद्धांतों का वे पालन करें और उसके प्रति अडिग रहें। यह भावना उनकी सूफ़ी इस्लाम भक्ति से ओतप्रोत गीतों में परिलक्षित होती है। इन गीतों में उन्होंने नबी, रसूल और मुर्शिद को उच्च स्थान दिया है। उन्होंने लिखा है– 'जिसे मुर्शिद की हुई कृपा, वही मर्म जान पाए'। उनके एक अत्यंत सुंदर गीत का शीर्षक है:

रूप काठ की यह नौका,
नहीं डूबने का भय,
पार जो चाहे जाना,
नबी की नौका पर आए।

अन्य भक्तों की तरह, लालन शाह ने अपने अधिकांश गीतों में अपने हृदय की दुर्बलता और मन की मलिनता का बार-बार ज़िक्र किया है। उन्होंने अपने को पापी, अधम, अबोध कहके पुकारा है। उन्होंने अपने लिए 'कुपथगामी' और 'पातालगामी' विशेषण का भी प्रयोग किया है। एक जगह अपने को 'हठी', 'युक्तिहीन' और 'मर्यादाहीन' बताया है। उन्होंने बार-बार लिखा है कि उनके दोषों के चलते उनके भजन-पूजन में चूक हो गई– 'भूल हुई मेरी मूल साधना'।

उन्होंने कहा है, 'मन के अंधकार के कारण मैं आँख रहते भी अंधा हूँ'; 'मदन रस में डूबा, नाहक जगह-जगह फिर रहा हूँ'; 'अथाह तरंग में भय से ग्रसित सब कुछ समझने और देखने-सुनने के बाद भी मुझे ज्ञान नहीं हुआ है' और 'मेरे मन का धुँधलापन नहीं मिटा है'; 'मुझे मिली एक फूटी नौका, जन्म बीता पानी उलीचते'; 'मैं प्रेम-नदी में डुबकी लगाने से डरता हूँ और केवल किनारे-किनारे खड़ा रहता हूँ।'

अपनी इस दुर्दशा से उबरने का उन्होंने एकमात्र उपाय माना परमेश्वर की कृपा और करुणा और अपने गुरु का मार्गदर्शन। अपने साँई के प्रति उन्होंने बहुत प्रकार से समर्पण की भावना व्यक्त की

है। उन्होंने कहा है– 'मैं इस पार ही बैठा हूँ, ओ हे दयामय, मुझे दो उस पार पहुँचाए'; 'क्षमा करो हे अपराध मेरा, इस भाव कारागार में।'

लालन के गीतों का काव्य-सौंदर्य

लालन शाह के गीत सब प्रकार के अलंकारों से संपन्न हैं। उनके गीत उपमाओं और रूपकों से असाधारण रूप में समृद्ध हैं। इसमें उपमाओं से कहीं अधिक रूपक का प्रयोग किया गया है। सच पूछें तो उनके अधिकांश गीत ही सम्पूर्ण रूप में रूपक हैं। हरेक गीत के दो अर्थ हैं– एक शाब्दिक, जो स्वतः सुंदर, मधुर और मर्मस्पर्शी है, और दूसरा, शब्दों के भीतर छिपी भक्ति, साधना, प्रेम और भाव को दर्शाता है। जो कुछ थोड़ी उपमाएँ इन गीतों में आई हैं, वे सब स्वाभाविक और विलक्षण हैं।

सहजता और विलक्षणता उनके गीतों के अन्य अलंकारों को भी परिभाषित करती हैं, चाहे वह अनुप्रास हो या तुक। जहाँ कहीं भी किसी भी प्रकार के अलंकार आए हैं, वे सहज और अनायास हैं। लालन शाह के गीतों में शब्दों के प्रयोग और निर्माण में जैसी विविधता और सर्जनात्मकता है, वैसी शायद ही किसी लोक संगीतकार की रचना में मिले। लालन शाह ने तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फ़ारसी एवं स्वनिर्मित शब्दों का असाधारण प्रचुरता और औचित्य से प्रयोग किया है। सचमुच, इन लोकगीतों की भाषा-शैली अतुलनीय है और इनके काव्य-गुण वर्णनातीत है।

कुछ उदाहरण इस प्रकार है:

उपमा

पास रह कर दूर हैं साँई,
जैसे केश की आड़ में पहाड़ छिपा।

जात का फ़ातना (सरकंडा) डुबा दिया है, साधना के बाजार में।

अगर उस पंछी को पकड़ पाता,
तो मन बेड़ी लगाता उसके पाँव।

रूपक

इनके असंख्य उदाहरण हैं। जैसे छः मंत्रियों ने कुकांड में फँसाया यानी छः प्राकृतिक दोषों के कारण दुष्कर्मों में फँसा रहा।

'वास करता हूँ दिन-रात, सोलह दुर्जनों के साथ।' (ये सोलह दुर्जन हैं– दस इंद्रियाँ और छः रिपु)
'पिंजड़े के भीतर अनचीना पंछी' यानी शरीर के भीतर की वह आत्मा जिसकी सतत खोज में कवि है।

'पिंजड़ा रे तेरा कच्चे बाँस का।'– यहाँ मानव-देह की नश्वरता की ओर इशारा है।
'रंगमहल में हुआ प्रहार।'– जीवन में देखे सपनों का मृत्यु के आने पर चूर्ण-विचूर्ण हो जाना।

एक ही घाट पर आना-जाना,
एक ही माँझी खेता नाव।
(इस रूपक के द्वारा धर्म और जाति के आधार पर किए जाने वाले भेद-भावों की निस्संगता को दर्शाया गया है।)

'ब्रज में था एक काला मेघ'– यह कृष्ण के आगमन की सूचना है।
छः जना मिलके सेंध काटते,
चोरी करता एक जन।
(यानी छः दुर्गुण कुकर्मों की ओर प्रवृत्त कराते हैं और मन उसे कर डालता है।)

'पास रह कर उसको पुकारता,
उच्च स्वर में कौन पगला।'

लालन शाह के विलक्षण वाक्यगत तुकों (इंटर्नल राइम्स) के उदाहरण हैं– 'झखमारी है यह दुनियादारी'; 'खाली हाते एका पथे' (खाली हाथ एकाकी पथ पर); 'देख के सेमल फूल, रहता सदा व्याकुल'; 'रसिक हैं जो, चतुर हैं वो'; 'धनेर भरा जाच्छे मारा' (असबाब से भरी नौका उलट जाती है); 'तुम आगमन के फूल और गमन के रसूल' (यह रसूल के बारे में है और इसमें एक ही वाक्य में दो-दो इंटर्नल राइम्स हैं); 'नीर में निरंजन, यह अकथ्य धन' (इसमें इंटर्नल राइम और अनुप्रास दोनों है); 'मक्का जाकर, धक्का खाकर' (इसमें दो इंटर्नल राइम हैं)।

लालन शाह के गीतों में अनुप्रास के कुछ अनूठे नमूने हैं– 'है जिसका मन-मानुष मन में'; 'ठुकनी ठुके' (हथौड़ा से चोट मारने पर); 'कटि पे कौपीन'; 'नबी की नौका'; 'होना चाहो हज़ूर की दासी'; 'मुड़ा के माथा, गले में काँथा' (इसमें अनुप्रास और तुक दोनों हैं)। 'कुरस कुसंग में फँसकर'; 'पर ही परमेश्वर'; 'ढाँक दे ढक्कन देकर' आदि।

इन गीतों की शैली में एक और कमाल है– देशज शब्दों का प्रभावशाली प्रयोग और इन शब्दों एवं तत्सम शब्दों के आधार पर गठित लालन शाह के अपने शब्द और शब्द-समूह। उदाहरण के लिये, इन्होंने अत्यंत सुंदर ढंग से धंधा, झखमारी, दग़ादारी, दुनियादारी आदि शब्दों का प्रयोग किया है। पुराने ज़माने में, ख़ासकर ग्रामीण इलाक़ों में प्रयोग में आनेवाले कुछ शब्दों के इन गीतों में प्रयोग से उस ज़माने का पूरा समाज, संस्कृति और रीति-रिवाज़ आँखों के सामने आ जाते हैं। इनमें से कुछ शब्द हैं–'रत्ती माशा' (उस ज़माने में वज़न के लिए प्रयोग में आनेवाला शब्द); 'सोलह कला' (वह वस्तु, जिसमें गुणवत्ता संपूर्ण रूप से समाहित हो); 'क्षार गौरव' (मिथ्या गौरव); क्षार शब्द 'क्षर' से निकला है यानी जो टिकाऊ न हो। इसी तरह, 'पैतियाबे' (इस शब्द का हिन्दीभाषी क्षेत्र में आज भी 'पतियाना' यानी विश्वास करना के अर्थ में प्रयोग किया जाता है)। 'माया से ठुँसे ज्ञान-चक्षु' में 'ठुँसा' शब्द का कितना अद्भुत प्रयोग किया गया है। 'पारेर कड़ि' (नदी पार करने के लिए कौड़ी या पार-कराई); 'ज़ोर-ज़बर खाटबे ना' (ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं चलेगी, यहाँ खाटबे यानी घटना शब्द का बड़ा ही सुंदर प्रयोग हुआ

है)। और कुछ अन्य देशज शब्दों, जिनका सटीक और सुंदर प्रयोग हुआ है, वे हैं– देड़ी (फाँसी का फंदा), बखानी (वर्णन करना)। देहात में अक्सर प्रयोग होनेवाले शब्द 'खाँटी'। इन शब्दों का कई स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप से प्रयोग किया है जैसे, 'नयन हुए खाँटी', 'मन को करो खाँटी'।

जिन शब्दों या शब्द-समूहों का लालन शाह ने निर्माण किया है, उनमें से कुछ अविस्मरणीय हैं– 'हामेश घड़ी' (जो घड़ी हमेशा एक निर्धारित जगह पर टँगी हो); 'मानुष-मक्का' (मनुष्य का हृदय जो सर्वोपरि तीर्थस्थान है); 'कौपीन ध्वजा' (कौपीन जिसे साधु लोग अपनी पहचान के लिए, यानी झंडे के रूप में पहनते हैं), और 'की रूप ध्वजाय' (ईश्वर को किस रूप में और किस ध्वजा या निशानी से पहचानें)। उपरोक्त शब्द-समूहों के गहरे अर्थ हैं, जिन पर विस्तार से लिखा जा सकता है। 'ध्वजा' शब्द का ऐसा प्रयोग अन्यत्र पाना दुर्लभ है। इसी तरह से, 'आसले खाद लगाली' (असल में अशुद्ध और मूल्यहीन वस्तु मिला दी) में 'खाद' शब्द का प्रयोग अनूठा है। लालन शाह ने कहीं-कहीं काव्य-सौंदर्य और संगीतात्मकता लाने के लिए व्याकरण के प्रयोग में बहुत ही सूक्ष्म और निपुण परिवर्तन किया है। उदाहरण हैं– 'पारबी छेड़े सुख-विलासी' (यहाँ संज्ञा 'विलास' की जगह विशेषण 'विलासी' का इस्तेमाल किया गया है, जिससे तुक भी मिलता है और एक तरह का ध्वनिगत प्रभाव भी पड़ता है)।

उन्होंने 'ज्ञानी' या 'प्रबुद्ध' शब्द के बदले 'चेतन (गुरु)' का और 'कुटुंबपना' के लिए 'कुटुंबिते' यानी 'कौटुंबिकता' का प्रयोग किया है। साधुओं के विशेषण के रूप में पुल्लिंग शब्द 'गण्यमान' की जगह तुक मिलाने और उनका मखौल उड़ाने के लिए स्त्रीलिंग शब्द 'गण्यमानी' का उपयोग किया है।

'होस ना कारो इंतज़ारि' में निर्भर या अवलंबी शब्द की जगह संज्ञा 'इंतज़ारि' शब्द का प्रयोग नितांत मौलिक है।

इसी तरह, 'क्षांत दे रे झाँपाई खेला' यानी बंद कर दो यह छिप-छिपकर डुबकी मारने का खेल। इसमें 'क्षांत' और 'झाँपाई' शब्द का इस तरह का प्रयोग सर्वथा नूतन है।

'अकूलेर गति'– यह अधम, असहाय या भवसागर में डूबते व्यक्ति की दुर्दशा के बारे में आया है।

लालन शाह ने अपने अनेक गीतों में अरबी और फ़ारसी शब्दों का सुंदर प्रयोग किया है। उनके चयन में मौलिकता दिखाई है। साथ ही, मूल शब्दों के आधार पर अपने शब्द गढ़े हैं।

हम 'मानुष-मक्का' का ज़िक्र कर चुके हैं। अन्य शब्द हैं– 'बदहवा' (अमंगल लक्षण); 'बदलोभा' (अत्यंत ख़राब लोभी)। उन्होंने कई जगह 'मुक़ाम' शब्द का बेहद ख़ूबसूरत प्रयोग किया है। जैसे, 'निज मुक़ाम ढूँढ़ो, बहुत दूर न जाओ', यानी ईश्वर को अपने अंदर ही ढूँढ़ो। 'अठारह मुक़ामों के बीच जलती है एक रूप की बाती' (देह साधना के इस गीत में अठारह मुक़ाम, मनुष्य के शरीर और मन की अठारह विकृतियाँ हैं जिसके बीच रूप की बत्ती जलती है यानी परमेश्वर का निवास है)।

उन्होंने दिल दरिया, बेना (आधार), दग़ादारी, इल्लत, ख़जलत आदि शब्दों का समुचित एवं प्रभावशाली प्रयोग किया है। अल्लाह की जगह पर उन्होंने यथोचित ख़ुदा, 'ला-शरीक', 'ला-इलाहा', 'इल्लाला', 'नफ़ी' और 'एजबात', 'मौला' आदि शब्दों का इस्तेमाल किया है। उन्होंने इस्लाम के पहले के सभी लोगों को 'मदीनावासी' कहके पुकारा है, जो 'बनवासी' थे, और जिन्होंने मुहम्मद के आने के बाद ज्ञान और शांति पाई। उन्होंने फ़ारसी से लिए गए 'आदम के क़ल्ब' (मनुष्य का हृदय) और 'आतिशी कोड़ा'-जैसे संयुक्त शब्दों का बहुत ही सुंदर प्रयोग किया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि हिन्दी साहित्य में कबीर-जैसे कोई व्यंग्य-लेखक नहीं हुए। बांग्ला लोक-साहित्य के संदर्भ में यह बात बहुत हद तक लालन शाह के बारे में भी कही जा सकती है। इसके प्रमाण में उनकी केवल एक कविता का संक्षिप्त विश्लेषण पर्याप्त होगा।

यह कविता ईश-प्रेम के नाम पर व्यापार करनेवाले साधु-संतों के बारे में है। लालन शाह उन्हें 'प्रेम हाट का बुलबुल' कहकर पुकारते हैं। 'ये बात-बात में करते हैं ब्रह्म का आलाप, लेकिन मन में भरे हैं राशि-राशि पाप।' दरअसल, वे अच्छी-ख़ासी 'वैष्णवगिरि' करते हैं। हरिनाम का ज़ोर से उच्चारण करते रहते हैं और तीन लड़ियोंवाली माला पहने रहते हैं। झाड़-फूँक द्वारा भूत भगाने के कारण ही वे गण्यमान्य माने जाते हैं। साधुओं की हाट में उनका आना-जाना होता है। वे सदा मदनरस में मतवाले रहते हैं। लालन कहते हैं कि 'लबालब भरा उनका प्रेम उतावलापन मिथ्या है'।

लालन शाह के संगीत की भाषा-शैली की एक विशेषता है– प्रश्नों एवं आत्म-संबोधन के रूप में इन गीतों की रचना-प्रणाली। उनके बहुत-से गीत प्रश्नों के रूप में पूछे गए पद हैं। कई गीत, जिनमें से प्रश्नात्मक गीत भी शामिल हैं, आत्म-संबोधन या जनसाधारण के संबोधन की शैली में हैं। इन दो श्रेणियों (प्रश्नवाचक एवं आत्म-संबोधित) के गीतों के कुछ उदाहरण हैं: 'होना चाहो हुज़ूर की दासी?'; 'क्या आसानी से होगा उनका दर्शन?'; 'कहाँ रहेंगे ये भाई-बंधु, पड़ेगा जिस दिन काल के हाथ?'; 'अनुराग न होने से क्या हो सकता साधन?'; 'संभव है क्या मेरे लिए पहचानना उस रूप को?'; 'मन मेरे, मिथ्या गौरव में डूबे हो भव में; नासमझ मन, तुझसे और क्या कहूँ?' ये प्रश्नवाचक एवं आत्म-संबोधन दोनों हैं। 'देख रे झखमारी, है यह दुनियादारी' एवं 'अबोध मन, तुझसे और क्या कहें' आदि आत्म-संबोधन की शैली में हैं। कुछ अन्य सुंदर गीत प्रश्नवाचक हैं, जैसे, 'साँई मेरे कब खेलते हैं कौन खेला?', या 'क्यों साधु-टोली में आया?'

किसी भी महान साहित्यकार, जो पहुँचा हुआ साधक और महामानव है, उसकी की रचना में अनेक अमर वाणियाँ स्वाभाविक रूप से निःसृत होती हैं। यहाँ हम लालन शाह के गीतों को अमरत्व प्रदान करनेवाली कुछ वाणियों का ज़िक्र कर रहे हैं– 'रति से मति झरती'; 'सुख से है शांति भली'; 'समय गुज़रने पर साधन होगा नहीं'; 'रसिक हैं जो, चतुर हैं वो'; 'मन आसानी से है क्या सही होना'; 'पढ़ने से क्या मिलता पदार्थ'; 'प्रेम करना नहीं है प्राण से मरना'; 'लोक लुभाने के लिए मुँह से हरि-हरि बोलता'; 'जहाँ जिसकी व्यथा निहायत, वहीं जाय स्वभाववश साधु हाथ'; 'फल की आशा नहीं करे, पर फूलों का मधुपान करे' (देखें, गीता के कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, अध्याय-2, श्लोक 47)। अंत में ग़ौर करें, यह वाणी कितनी काव्य-सौंदर्य मंडित और साथ ही साथ सारगर्भित है:

उसकी काम नदी में निकल आए हैं बालूचर।

और

उसकी प्रेमनदी में नहीं भरता जल।

अनूठी भाषा-शैली

लालन शाह ने अपने गीतों में जितनी संख्या और जिस कौशल से तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है वह नितांत चौंकाने वाला है। आजकल साधारणतया जिस तरह हिन्दी लिखी जाती है उसमें ऐसे शब्दों का मिलना मुश्किल है। आधुनिक बांग्ला में निस्संदेह आधुनिक हिन्दी से अधिक तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है। लेकिन लालन शाह के गीतों में आधुनिक बांग्ला में प्रयोग में आनेवाले तत्सम शब्दों से भी कहीं अधिक खुलकर इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसलिए, ये कविताएँ आज के हिन्दीभाषी शिक्षित वर्गों को तो छोड़ दें, बंगाली शिक्षित वर्गों के भी समझ के बाहर हो गई हैं। उनके गीतों में प्रयुक्त कुछ तत्सम शब्दों के उदाहरण हैं– अहर्निश, दिवारात्रि; क्षिति, जल, हुताशन, महारथी, महाजन, महाभाव-प्राप्त पुरुष, व्रती, भावुक, रसिक, प्रेमी, अनुरागी; पंचतत्त्व, वेदांत, आगम, निगम, शतदल, द्विदल, सहस्रदल, निरूपण, अन्वेषण, सृष्टिकर्ता, कीर्तिकर्मा, निरंजन, गौष्ठ, गौर, गौरव; यंत्र, यंत्री, तंत्र, तंत्री, मंत्र, चरण-तरी, त्वरित, कपाल, कांतारी, मदन, भुजंगना, योजन, लक्ष, स्मरण, दर्पण, आदि।

यह आश्चर्य का विषय है कि इन तत्सम शब्दों का प्रयोग एक ऐसे संत फ़क़ीर ने किया है जो निरक्षर माना जाता है और जिसकी शिक्षा केवल अपने गुरु के सान्निध्य एवं योगसाधना की प्रक्रिया में हुई थी।

तद्भव शब्दों में 'घूँघटा' शब्द का प्रयोग बहुत ही सुंदर है जो रहस्यवादी कविताओं के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए सटीक बैठता है। घूँघटा शब्द जिसका हिन्दीभाषी क्षेत्रों में घूँघट के रूप में प्रयोग होता है, तत्सम शब्द अवगुंठन से निकला है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी कविता 'असमाप्त' में इस शब्द का बहुत ही सुंदर प्रयोग किया है– 'स्पंदित करेछे जानी, आमार अवगुंठन खानी'' (तुम्हारे निश्वास ने मेरे अवगुंठन को स्पंदित कर दिया है)।

लालन शाह ने 'जात' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के 'कास्ट' शब्द के लिए नहीं किया है, बल्कि संप्रदाय या धर्मावलंबी के लिए किया है। ज़ाहिरन, जात-पाँत का ज़िक्र करने के पीछे उनका इरादा था हिन्दू-मुसलमान के बीच के भेदभाव के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाना। उनके एक गीत का शीर्षक है:

सब पूछते लालन फ़क़ीर हिन्दू या मुसलमान,
लालन कहे पता नहीं मुझे, मेरी ही पहचान।

लालन शाह ने इस झमेले को पूर्णत: बेकार और अर्थहीन बताया। उनके एक और बहुत सुंदर गीत का शीर्षक है– 'भक्त के द्वार पर बंदी हैं साँई, वह है हिन्दू या मुसलमान, नहीं कोई भेदभाव।'

लालन शाह ने हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव को लेकर अनेक व्यंग्यात्मक गीत लिखे हैं। इनमें से कुछ हैं:

आने के समय कौन जात के थे,
आकर तुम कौन जात हुए
कौन जात होगे गमन काल में।

वे स्पष्ट और दृढ़ शब्दों में प्रश्न करते हैं– 'दो रूप सृष्टि है, इसका क्या प्रमाण?'

लालन शाह के अनेक गीत शास्त्रों की व्यर्थता ज़ाहिर करते हैं। इनमें से कई उदाहरण – 'लालन और कबीर' खंड में दिए जा चुके हैं। यहाँ इस विषय पर उनके व्यंग्यात्मक गीतों के कुछ उदाहरण हैं:

रहता जिसके मन का मानुष मन में,
वह क्या जपता माला।

इस संबंध में कबीर की तरह ही उपमा देते हुए उन्होंने लिखा है–

मन न मुँड़ाए, केस मुँड़ाने से मिल सकता क्या रत्न।

यहाँ तक कि चैतन्य महाप्रभु, जिनके भक्ति-भाव की महानता के बारे में उन्होंने कई गीत लिखे हैं, के भी भजन-कीर्तन और भ्रमण के भी बारे में कटाक्ष करते हुए उन्होंने एक गीत लिखा है, उसका शीर्षक ही सब कुछ कह देता है:

घर में क्यों नहीं हो सकती फ़क़ीरी
क्यों हो गए निमाई आज देशांतरी'। (ये गौरांग महाप्रभु की माँ के वचन हैं)

तीर्थस्थान की व्यर्थता के बारे में उनके एक गीत में बहुत ही रोचक वर्णन है:

मक्का जाकर, धक्का खाकर, जाना चाहो अब काशी धाम।

अन्य फ़क़ीरों की तरह लालन शाह पुनर्जन्म और स्वर्ग-नरक में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने अपने एक गीत की दो पंक्तियों के शीर्षक में एक तीर से दो निशाने साधे हैं:

देखो ना रे मन पुनर्जन्म कहाँ से होता,
मरने पर यदि लौट आएँ तो फिर स्वर्ग-नरक किसे मिलता।

यह आम बात है कि जो पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं, वे स्वर्ग और नरक में भी विश्वास करते हैं। लालन शाह ने कहा है कि अगर मरने के बाद कोई लौट आए, यानी पुनर्जन्म हो तो फिर वह स्वर्ग-नरक कैसे जा सकता है? लालन शाह ने यहाँ पुनर्जन्म और स्वर्ग-नरक के बीच एक अस्तित्वात्मक विरोधाभास दर्शाया है।

समकालीन विश्व में लालन शाह फ़क़ीर की प्रासंगिकता

एक प्रभुसत्तासंपन्न राष्ट्र के रूप में बांग्लादेश के प्रादुर्भाव के बाद वहाँ लालन शाह की साधना, संगीत और कविता का बहुत बड़े पैमाने पर पुनरोत्थान हुआ है। कुछ वर्ष पहले, बांग्लादेश में लालन शाह फ़क़ीर की दूसरी शतवार्षिकी मनाई गई। उनके सम्मान में डाक टिकट निकाला गया, जिसमें

ज्योतिरींद्रनाथ ठाकुर का बनाया रेखाचित्र था। लालन शाह अभी बांग्लादेश में एक 'आइकॉन' बन गए हैं। इसका प्रमुख कारण तो यह है कि हरेक नव-निर्मित राष्ट्र को विश्व में अपनी प्रतिष्ठा और गरिमा स्थापित करने के लिए एक 'आइकॉन' की आवश्यकता होती है, और बांग्लादेश को इसके लिए लालन शाह से बढ़कर और कौन मिल सकता था!

लालन शाह बांग्लादेश के ही नहीं, बल्कि वृहत भारत के सर्वोच्च और शाश्वत मूल्यों के उत्तराधिकारी हैं। उनका संगीत उनके प्रयाण के बाद भी बांग्लाभाषी लोगों के मानस में झंकृत हो रहा है। पिछले चार दशकों से फ़रीदा परवीन सरीखी प्रसिद्ध गायिका ने गीतकार के रूप में उनकी लोकप्रियता को न केवल बनाए रखा, बल्कि उसका विशाल प्रसार भी किया है।

बांग्लादेश के शिक्षा-लोक में विगत कुछ वर्षों में लालन गवेषकों की संख्या में प्रभावशाली वृद्धि हुई है। उनके जीवन, दर्शन, संगीत और काव्य से संबंधित अनेक शोध-कार्य संपन्न हुए हैं, और अभी भी चल रहे हैं। इसके आधार पर डॉक्टरेट की अनेक उपाधियाँ दी गई हैं, और काफ़ी तादाद में पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। मैं कम-से-कम बीस ऐसी पुस्तकों से अवगत हूँ। विदेशी भाषाओं, ख़ासकर अंग्रेज़ी, में लालन शाह के गीतों के अनुवाद छप रहे हैं। बांग्लादेश, ख़ासकर कुश्तिया और ढाका, में लालन शाह के नाम पर स्थापित कई साधु मंडलियों द्वारा नियमित रूप से गोष्ठियों और मिलन का आयोजन किया जा रहा है जिसमें इस संत की साधना, दर्शन और काव्य की चर्चा होती है और उनके गीत गाए जाते हैं। हाल ही में, अपनी ढाका यात्रा के दौरान मुझे ऐसी ही एक मंडली की गोष्ठी में शामिल होने का अवसर मिला था।

पश्चिम बंगाल में दशकों से लालन शाह के गीत प्रचलित और लोकप्रिय हैं। बंगाल के क़रीब-क़रीब सभी प्रसिद्ध लोकगीत गायकों ने लालन गीत गाया है। हाल में कुछ तबक़ों में इन गीतों की लोकप्रियता में वृद्धि हुई है। लेकिन, बांग्लादेश की तुलना में पश्चिम बंगाल में लालन शाह को समग्र रूप से एक संत, कवि और गीतकार की तरह प्रतिष्ठापित करने पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। भारत के अन्य हिस्सों में तो लालन शाह अभी भी अपरिचित हैं।

एक तरह से देखा जाए तो लालन शाह की प्रासंगिकता बांग्लादेश की तुलना में भारत में ज़्यादा है। बांग्लादेश में एक प्रकार की धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भाषागत समरसता है जोकि इसके समाज को विघटन से बचाए रखने में अंतिम सुरक्षा का काम कर सकता है। इसकी तुलना में, भारत में धर्म, भाषा और अन्य प्रकार की जाति-पहचान के नाम पर बड़े पैमाने पर विविधता और पार्थक्य व्याप्त है। इसके अलावा, इस देश के लाखों नागरिक परंपरागत और विरासत में मिले भेदभाव और घृणा के शिकार हैं। इन विषमताओं से उत्पन्न कलह और हिंसा से जूझने में लालन शाह का समग्र रूप में पुनरोत्थान अत्यंत उपयोगी साबित हो सकता है।

बांग्लादेश और भारत की बात तो अलग रही, वर्तमान परिस्थिति में लालन शाह पूरे विश्व के लिए प्रासंगिक हो गए हैं। आज का मानव समुदाय धार्मिक कट्टरता और आर्थिक एवं सामाजिक विषमता तथा विभाजन से उत्पन्न घृणा, कलह, विद्वेष और हिंसा के गर्त में पड़ गया है। इसके चलते बड़े पैमाने पर हिंसा हो रही है, और लाखों लोग घर-द्वार छोड़कर अनिश्चित भविष्य की ओर पलायन कर रहे हैं, और अपने देश को छोड़ जान को ख़तरे में डाल अन्य देशों में पहुँचकर शरणार्थी बन रहे हैं।

ऐसी परिस्थिति में विश्व को लालन शाह के सहज मानुष-प्रेम और उस पर आधारित मानव-एकता के संदेश की बेहद ज़रूरत है। पिछले कुछ साल में इसी प्रकार के मूल्यों के एक महान प्रवर्तक जलालुद्दीन रूमी का विश्वव्यापी पुनरोत्थान हुआ है। लालन शाह के गीतों को मुख्य भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जनमानस तक फैलाया जा सकता है।

टिप्पणियाँ

अभी हाल में ही साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली ने मुचकुन्द दूबे द्वारा लालन शाह फ़क़ीर के चुनिंदा गीतों के हिन्दी अनुवाद का संकलन 'लालन शाह फकीर के गीत' 2017 में प्रकाशित की है। यह आलेख उसकी भूमिका पर आधारित है।

संदर्भ

अन्नदाशंकर राय (1992). *लालन फकीर उ तार गान*, तृतीय संस्करण. कलकत्ता: मित्रा एंड घोष पब्लिशर्स प्रा. लि.

अबुल अहसान चौधरी (संपा.) (2014/2008). *लालन समग्र*, पाठक समावेष, ढाका

उपेंद्रनाथ भट्टाचार्य (1957). *बांग्लार बाउल उ बाउल गान*. कलकत्ता: ओरिएंट बुक कंपनी

मुचकुन्द दूबे (2017). *लालन शाह फकीर के गीत*. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी

मुहम्मद मंसूरउद्दीन (1976क). *हारामणि*, प्रथम खंड, द्वितीय संस्करण, मुक्तधारा, स्वाधीन बांग्ला साहित्य परिषद, ढाका (पहला संस्करण, 1929

——— (1976ख). *हारामणि*, अष्टम खंड. ढाका: बांगला एकेडमी

——— (1978). *हारामणि*, सप्तम खंड, द्वितीय संस्करण.ढाका: स्वाधीन बांग्ला साहित्य परिषद

हजारीप्रसाद द्विवेदी (2016). *कबीर*, बाईसवाँ संस्करण (प्रथम संस्करण, 1971). राजकमल प्रकाशन

Tagore, Rabindranath (1953). *The religion of man*. London: George Allen and Unwin Ltd.